46

अनन्तमति की कथा

भूमण्डल में किसी समय अंग देश एक प्रसिद्ध देश रहा है। उसमें वसुवर्धन नाम का राजा राज्य करता था। उस समय उस देश की राजधानी का नाम चम्पापुरी था। उस राजा के लक्ष्मीमति नाम की रानी थी। उसका प्रियदत्त नाम का पुत्र था। रानी का सरल स्वभाव अनुकरणीय था। वह धर्म परायण स्त्री थी। उसको जैन धर्म के प्रति बहुत श्रद्धा थी, अतः माता के धार्मिक जीवन का प्रभाव पुत्र प्रियदत्त पर भी पड़ा। इसलिये वंश परम्परानुसार प्रियदत्त की स्त्री अंगवती भी पति के अनुकूल धर्म मार्ग में उदार स्त्री थी। उस अंगमती की कन्या का नाम अनन्तमति था। वह गुणों की खान तथा सुन्दर थी।

एक दिन की बात है कि अष्टान्हिका के पवित्र शुभ अवसर पर प्रियदत्त ने धर्मकीर्ति नामक महामुनि कि पास जाकर केवल आठ दिन के लिये ब्रह्मचर्य व्रत लिया। साथ ही अपनी कन्या अनन्तमति को भी ब्रह्मचर्य व्रत दिला दिया। यद्यपि उसने विनोदभाव से ही ऐसा किया था; परन्तु वह विनोदभाव अन्त में सत्य सिद्ध हुआ। अपने पूज्य पिताश्री द्वारा दिलाये गये ब्रह्मचर्य व्रत ने कन्या अनन्तमति के मन पर प्रभाव दिखलाया।

जब प्रियदत्त ने कन्या को विवाह योग्य देखा तो उसके विवाह की तैयारी प्रारम्भ करने लगा। घर में विवाह की धूमधाम देखकर अनन्तमति ने पिता से सादर निवेदन किया "पिताजी! आपने तो मुझे ब्रह्मचर्य व्रत से दीक्षित किया है, तो अब विवाह की तैयारी किसलिये?" कन्या की बात सुनकर प्रियदत्त चोंक उठा। वह कहने लगा कि हे पुत्री ! क्या मैंने तुझे ब्रह्मचर्य व्रत दिलाया था? मैंने तो मजाक किया था। क्या तू उसे सच्चा मानती है ? कन्या ने निर्भयता से उत्तर दिया कि "आप क्षमा करें, धर्म और व्रत विधान में मज़ाक की बात नहीं होती।" पिताजी ने दुःखी होकर कहा- "मेरे पवित्र कुल को उज्ज्वल करने वाली कन्या ! मैं मानता हूँ कि मजाक में दिया व्रत सत्य है; परन्तु वह तो आठ दिनों के लिये ही था, जबकि तू तो विवाह से ही इन्कार कर रही है।" पिताजी आपका कथन सत्य है, मैं मानती हूँ कि आपने आठ दिन के लिये ही वह व्रत दिलाया था; परन्तु आपने अथवा आचार्य ने उस समय मुझसे व्रत के

समय के सम्बन्ध में क्यों नहीं कहा ? पिताजी ! मैं तो आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करुंगी। इस जन्म में मेरा विवाह असम्भव है। कन्या की भीष्म प्रतिज्ञा के आगे पिता हार गया और लाचार होकर कन्या को धार्मिक पवित्र जीवन व्यतीत करने के लिये सुन्दर पुस्तकों का प्रबन्ध कर दिया। जिससे कि उसका जीवन शान्ति पूर्वक व्यतीत हो सके।

अनन्तमति प्रसन्नता से शास्त्र स्वाध्याय में लीन होकर पवित्र जीवन व्यतीत करने लगी। इसी प्रकार उसने योवन के आंगन में प्रवेश किया। उसके रोम-रोम से जवानी टपकने लगी। वह सुन्दर तो थी ही; परन्तु जवानी ने उसे देवकन्या से भी अधिक सुन्दर बनाकर अपना परिचय दिया। उसकी सुन्दरता का वर्णन करना उसका अपमान करने जैसा है। उसके मुख की सुन्दरता के समक्ष चन्द्रमा भी लज्जित हो जाता था। अनन्तमति के सौन्दर्य के समक्ष स्वर्गलोक की सुन्दरियां भी फीकी लगती थी।

एक दिन की बात है कि अनन्तमति अपनी फूलबाड़ी (बगीचे) में मनोरंजन के लिये झूला झूल रही थी। इतने में कुण्डलमंडित नाम का विद्याधर अपनी स्त्री के साथ वायुयान पर जा रहा था। उसकी नजर झूला झूलती हुई अनन्तमति पर पड़ी। वह अनन्तमति की सुन्दरता पर मुग्ध हो गया; परन्तु उस समय उसकी स्त्री बाधक बन रही थी। वह शीघ्रता से विमान को घर ले गया और अपनी स्त्री को विमान से उतारकर शीघ्र वापस आया। परन्तु उसकी स्त्री ने उसके मन का भाव जान लिया। जब विद्याधर विमान लेकर रवाना हुआ तो वह भी उसके पीछे-पीछे चल दी। कुंडलमंडित जबरदस्ती अनन्तमति को विमान में बैठाकर ले जाने लगा कि वहीं उसकी नजर अपनी स्त्री पर पड़ी, जिससे वह डर गया और वह अनन्तमति को पर्णलब्धि नामक विद्या के सुपुर्द करके वहाँ से गमन कर गया।

उस विद्या ने अनन्तमति को घोर जंगल में छोड़ दिया। वह उस निर्जन वन में अकेली रोने लगी। इतने में शिकारी भीलराज वहाँ आ पहुँचा। वह वासना के विचार से अनन्तमति को अपने घर ले गया।

अनन्तमति के जीव में जीव आया और वह विचारने लगी कि अब मेरे प्राण बचेंगें, मैं अपने घर पहुँच जाऊंगी; परन्तु वह भ्रम में थी। भीलराज अनन्तमति से कहने लगा कि- ''देवी ! तू कितनी भाग्यशाली है कि मैं एक राजा तेरे सौन्दर्य पर मोहित हुआ हूँ, मैं तेरे चरणों में गिरकर वरदान मांगता हूँ कि मेरे साथ भोग-भोगकर आनन्द प्राप्त कर, मैं तुझे अपनी पटरानी बनाऊंगा। मेरे ऊपर कृपा करके तेरे सुख का स्वाद चखने दे।''

अनन्तमति उसकी दुष्टतापूर्ण बातें सुनकर फूट-फूटकर रोने लगी; परन्तु इस घोर जंगल में उसका रोना कोई सुने ऐसा नहीं था। सत्य ही है कि पापियों के हृदय में दया का नाम नहीं होता। उसने अनन्तमति पर साम-दाम और दण्ड नीति से काम लेना शुरु किया।

अब अनन्तमति ने अपने हृदय में दृढ़ निश्चय किया कि इस दुष्ट के आगे विनर्ता, विनय और नम्रता से काम नहीं चलेगा, उसने भीलराज को धिक्कारा। सती-साध्वी के नेत्रों से क्रोध कि चिंगारियाँ निकलने लगी; परन्तु उस राक्षस पर कुछ भी असर नहीं हुआ। उसी समय अनन्तमति के शील से प्रभावित होकर वनदेवी ने आकर उसकी रक्षा की। देवी भीलराज से क्रोधपूर्ण शब्दों में कहने लगी- नराधम ! तू इस देवी को नहीं पहिचानता कि यह पवित्र आत्मा है। दुष्ट ! याद रख कि संसार भर में यह महान देवी है। इसकी तरफ खराब दृष्टि की तो तेरी खैर नहीं है।

इस प्रकार वनदेवी उसे धमकाकर चली गई। भीलराज डर गया। देवी के डर से उसने अनन्तमति को एक सेठ के हाथ में सौंपकर कहा कि " इसे घर पहुँचा देना।" साहूकार प्रसन्न हो गया। वह भी पापी था। वह अनन्तमति के समान दुर्लभ सुन्दर स्त्री को पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। वह विचारने लगा कि देखो ! बिना परिश्रम के कैसी सुन्दरी मिली है। अगर यह मेरा कहना मानेगी तो ठीक, अन्यथा मेरे से छूटकर कहाँ जायेगी।

इस प्रकार अपने मन में खराब विचार करके दुष्टता से अनन्तमति से कहने लगा, "देवी, तेरे भाग्य की क्या प्रशंसा करुँ, एक दुष्ट राक्षस के हाथ से तेरा छुटकारा हुआ है। मेरे पास आकर तेरा भाग्य चमक उठा है। कहाँ तो तेरा चन्द्रमा के समान सुन्दर मुखड़ा और कहाँ भयंकर भील। मैं मेरे भाग्य को कैसा धन्य मानूं ? धन्य है मेरा भाग्य, जिससे तेरे समान देव दुर्लभ सुन्दर स्त्री प्राप्त हुई है। सत्य है भाग्यशाली को ही सुन्दर स्त्री प्राप्त होती है। तेरे जैसी स्त्रीरत्न का मिलना महाभाग्य का लक्षण है। हे देवी ! मैं अनन्त धन, सुख, वैभव का स्वामी हूँ और तू विश्व प्रसिद्ध अपूर्व सून्दरी। मैं तेरे चरणों का दास बनना चाहता हूँ। तू मुझे अपना ले और अपने हृदय में स्थान दे। मैं भी अनुभव करता हूँ कि मेरे साथ ही तेरा जीवन भी कृतकृत्य हो जायेगा। यहाँ अनन्तमति अपने कोमल, निष्कलंक हृदय में दुष्टों के हाथ से छुटकारा मिलने का विचार करती थी कि यह सेठ भला और सज्जन है, अब मैं शीघ्र ही अपने पिता के पास पहुँच जाऊंगी, अब डरने की कोई आवश्यकता नहीं। सत्य ही है कि सदाचारी लोग संसार को भी उसी दृष्टिकोण से देखते हैं।

निर्दोष अनन्तमति जिसे देखती उसे सत्य पात्र ही मानती। उसके हृदय में पाप का नाम नहीं था; परन्तु साहूकार की वासनापूर्ण बातें सुनकर उससे प्रार्थना करते हुए कहा- "मान्यवर! मैं आपके पास आकर अपने को सुरक्षित समझती रही, मैं आपको अपने पिता के समान समझती रही कि तुम मुसीबत में मेरी पिता के समान रक्षा करोगे; परन्तु तुम्हारे कामुकतापूर्ण व्यवहार ने मेरे सामने धरती धुजा दी है।"

मैं किस पर विश्वास करूँ मैं तुम्हें अपना रक्षक समझी परन्तु तुम तो मेरे भक्षक बन गये। मुझे दुःख होता है कि तुम्हारे जैसे सज्जन ऐसी नीचतापूर्ण बाते करते हैं। मैं तुम्हारा चरित्र देखकर निश्चय पूर्वक कहती हूँ कि तुम्हारा धन और भोग-विलास के साधन को धिक्कार है, धिक्कार है... लाखों बार धिक्कार है तुम्हारे वंश को, जिसमें जन्म लेकर नीचता का परिचय दे रहे हो, मैं उसे नफरत की नजर से देखती हूँ। तू मनुष्य नहीं, मनुष्य के रूप में राक्षस है........ जो धोखा देकर विश्वासघात करता है वह पापी है। उसको देखने से भी पाप लगता है। अधम नरपिशाच को जितना धिक्कारे उतना ही थोड़ा है इस प्रकार दुःखी होकर निन्दा करके अनन्तमति चुप हो गई।

वह साहूकार अनन्तमति की स्पष्ट बातें सुनकर धक्क रह गया। सती-साध्वी के तेज के आगे उसका बोलने का साहस नहीं हुआ; परन्तु उस दुष्ट ने अनन्तमति को कामसेना नामक वैश्या के फंदे में फंसाकर क्रोध का बदला लिया।

मनुष्य को अपने कर्म का फल तो भोगना ही पड़ता है। उसकी गति विचित्र है। 'कोई नहीं कर्म लेख को मेटनहारा' की उक्ति सत्य ही है। वहाँ वैश्या के हाथ में आकर अनन्तमति के दुःखों का पार नहीं रहा। उसने सती को भांति-भांति के प्रलोभन बताये। उसे दुःखी करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। वह चाहती थी कि अनन्तमति को भी भ्रष्ट करदे; परन्तु अनन्तमति तो सती स्त्री थी। उसके शील के साथ खेल करना अग्नि के साथ खेल करना था। अतः उस वैश्या ने लाख प्रयत्न किये; परन्तु अनन्तमति मेरु के समान अचल-अडिग रही। उसके सतीत्व को डगमगाना असंभव था।

जो संसार के दुःखों से घबरा जाता है वह पथभ्रष्ट हो जाता है; परन्तु जो सदाचार के पथ के पथिक हैं उन्हें पथभ्रष्ट करना लोहे के चने चबाने जैसा है। जब वैश्या समस्त प्रयत्नों में असफल रही तब उसने सिंहराज नामक एक व्याभिचारी राजा के हाथ में उसे सोंप दिया। हाय रे नसीब ! किस कुघड़ी में वह पैदा हुई थी कि जहाँ जाये वहाँ दुष्टात्माओं से ही भेंट

होती है। पापी सिंहराजा ने अनन्तमति के साथ दुराचार करने का विचार प्रगट किया; परन्तु सती साध्वी अनन्तमति विचलित नहीं हुई। जब उस दुष्टात्मा की इच्छा पूर्ण नहीं हुई तो उसने बलात्कार करने की कोशिश की; परन्तु सती के सतीत्व को लूट लेना कोई खेल नहीं था... . किसकी भुजाओं में ताकत है कि उसे मिटा सके। वहाँ वनदेवी प्रगट होकर कहने लगी कि- "पापी ! खड़ा रह। यदि सती के सामने आँख भी ऊंची की तो तेरा सर्वनाश निश्चित है।" इस प्रकार देवी उसे दण्ड देकर चली गई। देवी का भयंकर स्वरूप देखकर सिंहराजा के होश उड़ गये, उसका कलेजा थर-थर कांपने लगा। देवी चली गई; परन्तु सिंहराजा को खबर नहीं पड़ी। देवी के चले जाने के बाद उस दुष्ट ने अनन्तमति को एक घोर जंगल में छोड़ देने की आज्ञा सेवकों को दी।

अनन्तमति घोर जंगल में विचारने लगी कि कहाँ जाऊँ ? उसको मार्ग का पता नहीं था। अन्त में वह जंगल में फल खाती और पंच परमेष्ठी की आराधना करती हुई अनेक जंगलों और पहाड़ों को पार करती हुई अयोध्या नगरी में जा पहुँची। वहाँ उसकी भेंट पद्मश्री आर्यिका से हुई। उस आर्यिका ने अनन्तमति का परिचय पूछा। अनन्तमति ने सम्पूर्ण आप बीती कह सुनाई। उसकी आप बीती सुनकर आर्यिका को बहुत वैराग्य हुआ और उन्होंने अनन्तमति को सती शिरोमणी समझकर अपने पास रख लिया। अच्छे लोगों के लिये परोपकार ही व्रत है।

इधर प्रियदत्त अपनी पुत्री के गुम हो जाने के समाचार सुनकर अत्यन्त दुःखी हुआ। पुत्री वियोग से उसने घरबार से वैराग्य धारण किया। जब मनुष्य दुःखी होता है तब घर-बार भी श्मशानवत् लगते हैं। उसे सारा संसार सूना-सूना लगने लगा। घर में एक क्षण एक वर्ष के समान लगता था। उसका मन घर में नहीं लगता था सो वह घर से बाहर निकल गया। लोगों के बहुत समझाने पर भी उसने अपना निर्णय नहीं छोड़ा। इस कारण परिजन भी उसके साथ चल निकले। सभी अनेक सिद्धक्षेत्रों तथा अतिशयक्षेत्रों की यात्रा करते हुए अयोध्या नगरी में आ पहुंचे । वहाँ प्रियदत्त का साला जिनदत्त रहता था। उसने अत्यन्त प्रेम से प्रियदत्त का स्वागत किया और परिवार के लोगों के कुशल समाचार पूँछे। उसने अनन्तमति सम्बन्धी सारी घटना सुनी जिससे वह (जिनदत्त) अत्यन्त दुःखी हुआ; परन्तु कर्मफल के सामने सब लाचार हो गये।

दूसरे दिन एक ऐसी घटना हुई कि पिता-पुत्री का मिलन हो गया। बात यह हुई कि

जिनदत्त की स्त्री आर्यिका के साथ रहने वाली स्त्री (अनन्तमति) को भोजन कराने के लिये तथा चोक पूराने के लिये बुला लाई। अनन्तमति चोक पूरकर चली गई। इतने में प्रियदत्त अपने साले के साथ जिनालय में दर्शन करने के लिये गया था। वह वापस आकर जिनदत्त के घर में चोक पूरित देखकर उसे अपनी प्रिय कन्या अनन्तमति की याद आ गई और वह रोने लगा। उसने कांपते स्वर में कहा कि जिसने यह चोक पूरा है उससे मेरा मिलाप कराओ। उसका साला अपनी स्त्री के उसका स्थान पूछकर पद्मश्री आर्यिका के समीप पहुँच गया और अनन्तमति को साथ लेकर अपने घर आया। अपनी कन्या को देखकर पिता का गला भर गया। कितने ही दिनों के पश्चात् पिता ने पुत्री को देखकर उसे अपनी छाती से लगाया। प्रियदत्त ने अत्यन्त प्रेम से पुत्री के समाचार पूछे। कन्या ने सिसकते हुए आप बीती कह सुनाई। प्रियदत्त पुत्री की कष्ट कथा सुनकर कांप उठा और आश्चर्य के साथ कहने लगा कि मेरी कन्या ने असह्य कष्ट सहकर भी किस प्रकार सतीत्व की रक्षा की है।

अन्त में उसे अपनी कन्या से मिलकर अपने हृदय में आनन्द का जैसा अनुभव किया वह शब्दों से अगोचर है। वहीं जिनदत्त भी अत्यन्त प्रसन्न हुआ और इसी प्रसन्नता में जिनेन्द्र देव की रथयात्रा निकालने की तैयारी की, सबको सम्मानित करके दान दिया। कन्या से मिलकर प्रियदत्त ने अपने को धन्य माना, उसकी प्रसन्नता का कोई पार नहीं था।

अब प्रियदत्त घर जाने के लिये तैयार हो गया और उसने अपनी पुत्री से घर चलने को कहा। अनन्तमति ने हाथ जोड़कर पिता से प्रार्थना की कि "हे पूज्य पिताश्री ! मैंने संसार के समस्त नाटक देख लिये हैं। हाय ! उन्हें स्मरण करके मेरा आत्मा कांप उठता है। पिताजी! मैं संसारिक कष्टों को देखकर डरती हूँ। अतः आपसे सादर प्रार्थना करती हूँ कि आप मुझे घर आने को न कहें। आपसे मेरी प्रार्थना है कि मुझे जैन धर्म में दीक्षित होने की आज्ञा प्रदान करें। बस आपकी पुत्री की एक ही अभिलाषा है।"

कन्या की बात सुनकर प्रियदत्त डर गया। उसने लड़खड़ाती आवाज में कहा- पुत्री ! तेरा शरीर कोमल है, किस प्रकार तू तप के कठिन कष्टों को सहन करेगी। दीक्षा लेकर अत्यन्त कष्ट सहन करने पड़ते हैं, जिन्हें तू सहन नहीं कर सकती। अतः थोड़े दिन घर में रहकर साधना करो, तत्पश्चात् तेरी अभिलाषा पूर्ण होगी। यद्यपि प्रियदत्त ने प्रेमवश कन्या को दीक्षा लेने से इन्कार किया; परन्तु अनन्तमति के रोम-रोम में वैराग्य के भाव छा रहे थे। उसने गृह-परिवार, माता-पिता की ममता को ठोकर मारकर पद्मश्री आर्यिका के समीप जाकर दीक्षा

लेली। उसने दृढ़ता पूर्वक तपस्या का प्रारम्भ कर दिया। वह कठिन से कठिन कष्ट धैर्य के साथ सहन करती थी। लोग उसकी कठिन तपस्या देखकर आश्चर्य व्यक्त करते थे। उसने आजीवन दृढ़ता पूर्वक व्रतों का पालन किया और अन्त में वह अपनी अमर ज्योति फैलाती हुई सन्यास द्वारा मरण को प्राप्त करके सहस्त्रार स्वर्ग में जाकर देव हुई।

वह देव स्वर्ग में भी नये-नये वस्त्राभूषण धारण करता है और अनेक देवांगनायें उसकी सेवा करती है, उसके सुख और ऐश्वर्य की कोई सीमा नहीं है। सत्य ही है कि जब पुण्योदय होता है तब उसके प्रताप से जीवों को क्या-क्या नहीं मिलता ? यद्यपि अनन्तमति के पिता ने उसको खेल-खेल में ब्रह्मचर्य व्रत दिलाया था; परन्तु उसने इतने मात्र से ही उसका पालन किया। उसको संसार में किसी भी सुख का लालच नहीं था। उसने अपने उग्र तप के प्रभाव से स्वर्ग सुख प्राप्त किया। वहाँ भी उसका जीवन जिन भगवान की आराधना में व्यतीत होता है।

-आराधना कथाकोष में से संक्षिप्त सार

परमात्दशा भी द्रव्य में नहीं है, उससे रहित है। अहाहा! द्रव्य पर लक्ष गये बिना उसे प्रतीति में जोर नहीं आ सकता, जोर आता ही नहीं है। पर्याय का लक्ष्य छोड़कर मैं तों यही वर्तमान में हूँ- इस प्रकार द्रव्य में एकमेक हो जाता है तभी प्रतीति में जोर आता है।

-पूज्य गुरुदेवश्री